ISSN-2230-7540

मौर्य काल में सामाजिक व आर्थिक इतिहास का अध्ययन

Jamuna Lal Meena*

Lecturer,

Govt. College Karauli, Rajasthan

सार

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक पृष्ठभूमि में आजीविकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। बाशम ने आजीविकों के विकास की पृष्ठभूमि में कई आधारों को स्वीकार किया है जैसे- आर्यों के पूर्वी प्रसार के कारण गंगा-घाटी मंर प्रचलित अर्यैत्तर जीवन पद्धति से उनका सामंजस्य मगध विदेह आदि में परिव्राजक श्रमणशील सन्तों की रुढ़िवादी विचारवादी परम्परा जिसे विदेह राजा जनक एवं अन्य राजाओं का संरक्षण प्राप्त था, अनार्यों के प्रकृतिवादी विश्वासों से उद्भूत कर्म एवं पुनर्जन्म और आत्मा के आवागमन आदि से सम्बन्धित विचार जिसमें परिवर्तन को एक विशिष्ट नैतिकवादी मानसिकता का आवरण मिला, साम्राज्यवाद का विकास एवं गणतन्त्रात्मक राज्य पद्धति सहित, छोटी-छोटी सत्ताओं का हनन, नगरीय सभ्यता का चलन जिसके कारण समाज में एक और साधन सम्पन्न धनी वर्ग (राजा, धनिक, श्रेष्ठी आदि) के अति विलासितापूर्ण जीवन साध्य हो गया था। मौद्रिक प्रणाली का चलन स्थापित हो गया था एवं समाज में धनी एवं निर्धन की कोटियाँ स्थापित हो गयी थी। ये सभी कारण छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जनमानस में वैचारिक उद्वेलन का कारण बने। इस विकासमान परिस्थितियों से उत्पन्न नैराश्य भी कठिन तप अपरिग्रह तथा नियतिवाद जैसी जीवन पद्धति एवं मानसिकता का कारण रहा होगा। वैसे तो बदलती हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई विचारकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रचार द्वारा योगदान दिया लेकिन जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित किया बौद्ध तथा जैन धर्म ने विशेष रूप से बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय हुआ। बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों द्वारा निर्धारित वर्णव्यवस्था पर सीधा प्रहार किया तथा संघ में ऊँच-नीच सभी को समान स्थान देकर महाभारत की कथा में पशुओं की अकाल मृत्यु के कारण मकखलि का नियतिवादी बन जाना इस विचार की पुष्टि में किंचित सहायक है। मक्खलिपुत्र गोसाल का समय ऐसे राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन का युग था जब साम्राज्यवादी राजव्यवस्था का पदार्पण हो रहा था। नियतिवाद की आजीविक अवधारणा अन्ततोगत्वा एक केन्द्रीभूत शासन व्यवस्था का आधार बनी। आजीविको के धार्मिक विश्वासों एवं वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रकट होता है कि तत्कालीन समय में मुख्य धारा से हटकर एक भिन्न जीवन पद्धति का अनुमान इन्होंने प्रतिपादित किया जो न तो यज्ञ एवं बलि की समर्थक थी, न ही उपनिषदीय एक सत्तावादी दार्शनिक धारा की पक्षधर थी।

ISSN-2230-7540

प्रस्तावना

आर्थिक परिवर्तन की राजनीतिक

किसी भी देश की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने में उस देश की राजनीतिक परिस्थितियों एवं तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ठीक उसी प्रकार से छठी शताब्दी ई. पू. से लेकर द्वितीय शताब्दी ई. की राजनीतिक परिस्थितियों, तत्वों एवं घटनाओं ने भी उक्त युग की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में कार्य किया। हम प्रारम्भिक वैदिक काल की राजनीतिक परिस्थितियों को उनके भौतिक एवं सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में अलग रखकर नहीं देख सकते क्योंकि उनका जीवन बहुत हद तक खानाबदोश था आर्थिक दृष्टि से वे मुख्यतः पशुपालन की अवस्था में थे। उनके सामाजिक तथा सैनिक संगठन पर पशुपालन का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए एक गोष्ठ (गुहाल) में रहने वाले लोग एक गोत्र के हो गये। चूँकि गोधन जनजाति युद्धों का मुख्य कारण हुआ करता था। इसलिए युद्ध के पर्याय के रूप में गविष्टि अर्थात् गाय की खोज शब्द का चलन हुआ।" खानाबदोशी व्यवस्था होने के कारण उन्हें सदा अपने स्थान बदलते रहने पड़ते थे। इसी कारण उनके द्वारा स्थिर सामाजिक आर्थिक व्यवस्था दे पाना कठिन था। वैदिक काल के अन्तिम चरण तक लोगों के मानस में प्रदेश का महत्व प्रतिष्ठित हो गया था और नये सामाजिक ढाँचे का उदय हो रहा था। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गों के लोग रहते थे। जिनका उदय वैदिक जनजातियों के विघटन और अवैदिक जनों के वैदिक समाज में शामिल किये जाने के परिणामस्वरूप हुआ था।

अध्ययन का उद्देश्य

1. सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक, धार्मिक तथा शैक्षिक अवधारणा

2. सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक पृष्ठभूमि में आजीविकों का महत्वपूर्ण योगदान

राज्यव्यवस्था ने कर की व्यवस्था को जन्म दिया

छठी शताब्दी ई. पू. तक जनों के संचरण और सन्निवेश का युग बीत चुका था और राज्य के संघटन में साजात्य की अपेक्षा देश तत्व अधिक महत्वशाली हो गया था। फलतः जनो का स्थान जनपदों ने लिया था जिनमें कुछ राजाधीन थे कुछ गणाधीन राजाओं का पारस्परिक संघर्ष उतना ही तीव्र था जितना की राजाधीन तथा गणधीन जनपदों का जैसा कि राजघाट *(बनारस)* तथा चिरांद *(छपरा)* के उत्खननो से प्रमाणित होता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में इन दिनों लोहे का व्यापक उपयोग होता था, इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रादेशिक राज्यों की स्थापना हुई जो सैनिक दृष्टि से भली-भाँति सज्जित थे और जिनमें मुख्य भूमिका क्षत्रिय वर्ग ने निभाई सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की राजनीतिक पृष्ठभूमि में जाने के लिए छठी शताब्दी ई. पू. की राजनीतिक परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ अपेक्षित रीज डेविडस पहला विद्वान था जिसने बुद्ध तथा बिम्बिसार के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला। इसमें सबसे महत्वपूर्ण उत्तरी बिहार का वृजियन, कुशीनारा का मल्ल राज्य तथा पावा के मल्ल राज्य थे। छोटे गणतंत्रों में हमें कपिलवस्तु के शाक्य देवदह और रामगाम के कोलिय, सुम्सुमार पहाड़ियों के भग्ग (भर्ग) राज्य, अलकप्प के बुलि राज्य, केसपुत्र के कलाम और पिप्पलिवन के मोरिय राज्य के उल्लेख मिलते हैं।

तत्पश्चात इन बड़े राज्यों में कोसल तथा मगल सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य बने चुके थे। बुद्ध के समय तक काशी, कोशल के साम्राज्य का अंग बन चुकी थी। ऐसे ही बिम्बिसार के समय अंग जनपद को आत्मसात कर लिया था। शाक्यगण कोसल की अधीनता स्वीकार करता था, फिर भी विडूडूभ ने उस पर संघटित हमला किया और अजातशत्रु ने लिच्छवियों से संग्राम ठाना। इन घटनाओं में गणराज्यों का हास, राजतंत्र का उत्कर्ष तथा मगध साम्राज्य का उत्कर्ष देखें जा सकते है।

अतः स्पष्ट है कि इस काल में उत्तरी भारत में सार्वभौमिक सत्ता का पूर्णतया अभाव था। यह राजनीतिक विश्रृंखला का युग था। सम्पूर्ण प्रदेश अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। कालान्तर से या तो सही गणतंत्र राजतंत्रो में परिवतर्तित हो गये या इनको

ISSN-2230-7540

समाप्त करके अनेक राजतंत्रों ने इनके सीन पर अपने को प्रतिष्ठित कर लिया। लगभग सभी गणतंत्र जनजातीय थे जिनका भारतीय समाज में समिलन हुआ। उदाहरणार्थ, हिमालयपारीय जनजातियाँ उत्तरकुरू और उत्तरमद्र "जो वैराज्य शासन प्रणाली से शासित बतलाये गये है।" पौराणिक अनुश्रुतियों में गणों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। उनमें एक हजार क्षत्रियों वाले एक गण का उल्लेख है। जिसका प्रधान नाभाग था। पुराणों में नाभाग के वंशजो का कोई जिक्र नहीं मिलता। पाटिल का तर्क है कि चूंकि नाभाग गणतंत्री जनजाति थे इसलिए पुराणों ने उनकी वंशावली सुरक्षित रखने की चिंता नहीं की। फिर भी यदि अशोक के एक अभिलेख में आये एक उल्लेख से यह माना जाये कि इसमें नाभागो का ही जिक्र हुआ है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये दीर्घकाल तक गणतंत्री जनजाति के रूप में बने रहे।

अतः हमारा विचार है कि अनेक जनजातीय राजवंशों के स्थापित होने पर ब्राह्मणीय आदर्शों पर आधारित आनुवांशिक राजपद से वंचित रखने वाली व्यवस्था से छुटकारा मिला होगा। साध्य एवं अंधविश्वास युक्त कर्मकाण्डो का अंत हुआ होगा, जिससे पशुधन को नष्ट होने से बचाया गया होगा क्योंकि बढ़ते हुए - कृषि के महत्व में इनकी बहुत बड़ी उपयोगिता थी।

वैदिक युग में क्षत्रिय का स्थान दूसरा रहा है, किन्तु बौद्ध युग में उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया, अन्य वर्गों के साथ उसका उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है। तत्कालीन समय सामाजिक संघर्ष श्रेष्ठता और विशिष्टता प्राप्त करने का था जिसमें क्षत्रिय वर्ग ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। बुद्ध ने ब्राह्मण अम्वष्ट से कहा, "क्षत्रीय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मण हीन।" यह कथन इस बात का प्रमाण है कि, क्षत्रिय अपने को उत्कृष्ट समझता था तथा प्रशासन एवं रचनात्मक कार्यों से अपने को सम्बद्ध करके समाज में उसने सर्वश्रेष्ठ स्थान बना लिया था। बौद्ध युग में वर्गों में निर्दिष्ट कर्म पर भी आघात किया गया।

मगध राष्ट्र की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों के व्यवहार में एक प्रकार का लचीलापन था। यह गुण सरस्वती व दृषद्वती के तटवर्ती प्रदेशों के लोगों में नहीं था। इन प्रान्तों में ब्राह्मण लोग व्रात्य वर्ग का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा लोग अपने महलों में शूद्र कन्याओं को भी स्थान दे देते थे। वैश्यों व यवनों को भी शासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया जाता था। यही नहीं कभी-कभी नगर शोभिनी की सन्तान के कारण ऊँचे घरानों का पैतृक राजवंशों के शासकों को भी राज्य से निकाल दिया जाता रहा। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की भी पहुँच के अन्दर होता था।

प्राचीन भारतीय साहित्य से पता चलता है कि राजा क्षत्रिय वर्ण का होना चाहिए। राजन्य और क्षत्रिय शब्द पर्यायवाची है। धर्म सूत्रों और अर्थशास्त्र से लेकर ब्राह्मण विचारधारा के सभी ग्रन्थों में इस बात पर जोर दिया गया। कौटिल्य के अनुसार धर्म प्रवर्तन के रूप में राजा चतुवर्ण व्यवस्था का रक्षक है। शान्ति पर्व में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि जाति, धर्म या वर्ण धर्म का आधार क्षात्रधर्म अर्थात् राज्य शक्ति है। मनु की घोषणा है कि राज्य तभी तक फल-फूल सकता है जब तक वर्णों की शुद्धता कायम रहती है। यदि मिश्रित वर्णों के वर्ण शंकर लोग वर्णों को दूषित करेंगे तो राज्य अपने निवासियों सहित नष्ट हो जायेगा। शान्तिपर्व में राजपद को वर्ण व्यवस्था का रक्षक कहा गया है। इसमें राजा के विरुद्ध विद्रोह करने वाले के लिए वही दण्ड निहित किया गया है जो समाज व्यवस्था में गड़बड़ी फैलाने वाले के लिए निर्धारित किया गया है।

फिर भी हमें जातकों एवं जैन, बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जिन्होंने राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर सर्वोच्च सामाजिक वर्ण में दाखिला लिया। नन्द लोग जिन्होंने शिशुनाग वंश से सिंहासन छीना था। नीच कुल के थे। पुराणों के अनुसार महामद्म या महापद्मपति नन्द वंश का प्रथम नन्द था जो शूद्र कन्या का पुत्र था। (शूद्रागर्भोद्भव) जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन के अनुसार नन्द गणिका माँ तथा नाई पिता का पुत्र था। उक्त कथन की पुष्टि सिकन्दर के समकालीन मगध के शासकों की वंशावली से भी हो जाती है। इस राजकुमार की चर्चा करते हुए कर्टियस ने लिखा है कि 'पिता नाई या बेचारा अपनी-रोजाना की कमाई से किसी तरह जीवन यापन करता था। लेकिन चूंकि देखने सुनने में काफी खूबसूरत थाय इसलिए रानी उसे बहुत मानती थी। रानी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही वह राजा के समीप पहुँच गया और राजा का विश्वासपात्र बन गया। एक दिन उसने छल से राजा की हत्या कर दी। अपने को राजकुमारों का अभिभावक घोषित करते हुए उसने राजा के सभी अधिकार अपने हाथ में कर लिए।

ISSN-2230-7540

चन्द्रगुप्त मौर्य जैन अनुश्रुतियों के अनुसार मयूरपालक का पुत्र था और इस प्रकार शूद्र की कोटि में था। पर मध्यकालीन अभिलेखों में वह सूर्यवंशी के रूप में महिमान्वित हुआ है। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने छः लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जस्टिन के अनुसार समूचा भारत चन्द्रगुप्त के कब्जे में था।

जैसा कि आर. सी. मजूमदार ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास में लिखा है कि उत्तर बिम्बिसार काल के राजनीतिक इतिहास की विशेषता यह रही है कि उस समय दो विरोधी अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी शक्तियाँ साथ-साथ काम कर रही थी अर्थात् एक ओर तो स्थानीय जनपदों के स्वायत्त शासन के प्रति प्रेम की और दूसरी ओर समूचे देश को एक राजतन्त्र के अधीन एकता के सूत्र में बाँधने की भावना थी। पहला आदर्श मनु ने शब्दों में इस प्रकार था

सर्वम् परवशम् सुखम्, सर्वम् आत्मवंशम सुखम। दोनों ही विरोधी विचारधाराएँ घड़ी के पेंडुलम की भाँति उत्तरोत्तर एक दूसरे का स्थान ग्रहण करती रही भारतीय राजनीति में वाह्य आक्रमणों के भय का तत्व सदैव प्रभावशाली रहा है, परन्तु समूचे देश की एकता इस तत्व के कारण नहीं थी, वरन "जब पृथ्वी को बर्बर जातियों ने भयभीत किया तो उसने चन्द्रगुप्त मौर्य की शरण ली। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रथम ऐतिहासिक सम्राट कहा जाता है और निःसन्देह उसके राज्य की सीमायें आर्यावर्त की सीमाओं के पार फैली हुई थी।"

मौर्य काल में राजनीतिक केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप बढ़ी हुई नियमन की शक्ति ने वर्ण संकरता के उद्भव व विकास को विशेष प्रोत्साहन दिया। जनजातीय समुदायों को एक विशेष सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत रखने का प्रयास किया गया। महाभारत के अनुशासन पर्व में भी मिश्रित जातियों का उल्लेख मिलता है। अर्थशास्त्र में आयोगव, अम्बष्ठ, क्षत्ता, चाण्डाल, मागध, वैदेहक, सूत, कुक्कुट, उग्र निषाद, पुल्कस, वैण, कुशीलव तथा श्वपाक का उल्लेख हुआ है। इनमें अधिकतर जातियाँ जनजातियाँ समुदायों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई। व्यावसायिक जनजातीय एवं विदेशी जातियों के सम्मिश्रण के फलस्वरूप इस काल में जातियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। पहली बार कौटिल्य ने ही वैश्यों और शूद्रों से गठित सेना को उसके संख्या बल के कारण महत्वपूर्ण माना।

न केवल शूद्र राजाओं के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं बल्कि ब्राह्मण राजाओं के भी उदाहरण प्राप्त है। जातकों से कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं के भी उदाहरण प्राप्त है। जातकों में कम से कम चार ब्राह्मण राजाओं के उदाहरण मौजूद हैं। आगे चलकर मौर्योत्तर काल में हमें आन्ध्रों, शुंगों, कण्वों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

लगभग द्वितीय शताब्दी ई. पू. से द्वितीय शताब्दी ई. तक का काल राजनीतिक उथल-पुथल का काल था। विदेशी शासन स्थापित हुआ तो विदेशी शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में स्वयं ही हास हो गया। विदेशी शासकों के अन्तर्गत वे शासित के रूप में अपने विशेष अधिकार खो बैठे। इस सन्दर्भ में तत्कालीन साहित्य में प्राप्त शूद्र तथा म्लेच्छ शासकों के उल्लेख विचारणीय है। चूंकि इन शूद्र राजाओं का कोई ऐतिहासिक साक्ष्य द्वितीय शताब्दी। ई. पू. से द्वितीय शताब्दी ई. के मध्य प्राप्त नहीं होता है। अतः आर. एस. शर्मा का यह निश्कर्ष ठीक प्रतीत होता है कि इन शूद्र शासकों से तात्पर्य विदेशी शासकों से ही रहा होगा। विदेशी शासकों को वृषल की संज्ञा मनु ने स्वयं प्रदान की है।

मनु ने स्नातक के लिए शूद्र राज्य में निवास का निषेध प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस काल में शूद्र शासक होते थे। ये प्रायः ग्रीक, शक, पार्थियन, कुषाण शासकों का निर्देश देते हैं जो बौद्ध धर्म और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और जिन्हें मनु ने इसे पतित क्षत्रिय बताया है, जो ब्राह्मणों से परामर्श न लेते और बताये गये वैदिक कृत्यों सम्पादन में चूक के कारण शूद्रत्व की स्थिति में पहुँच गये थे। कलियुग वर्णन के सन्दर्भ में भी शूद्र शासकों का प्रसंग प्राप्त होता है।

मनु ने ब्राह्मणों के लिए क्षत्रियेतर राजाओं से दान लेने का निषेध किया है। इस निषेध का निर्धारण करते समय सम्भवतः उनके मस्तिष्क में वृषतत्व को प्राप्त विदेशी क्षत्रीय राजाओं का ही चित्र रहा होगा। दान लेने के सम्बन्ध में मनु ने राजा को अत्यधिक निम्न श्रेणी प्रदान की है। इसका कारण भी सम्भवतः विदेशी शासक रहे होंगे जो कभी-कभी ब्रह्म हत्या करने और उनकी स्त्री तथा

ISSN-2230-7540

सम्पत्ति का हरण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं दिखाते थे। मिलिन्दपह में भी वंश परम्परा से हीन राजा को सिंहासन के अयोग्य बताया गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि विदेशी शासकों का सहयोग पाकर कुछ शूद्रों ने शासन व्यवस्था में उच्च अधिकार प्राप्त कर लिये थे। मनु ने उस राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना प्रकट की हैय जहाँ शूद्र धर्म प्रवक्ता (न्यायाधीश) नियुक्त किया जाता था।

महाभारत के शान्तिपर्व में एक स्थल पर कहा गया है कि जो शूद्र दस्युओं के आक्रमण के समय लोगों की रक्षा करें वह विशेष सम्मान का पात्र हो जाता था।

सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन की वैचारिक, धार्मिक तथा शैक्षिक

इस काल में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की दिशा देने वाले अनेक विचारधाराओं का जन्म हुआ। जो विभिन्न धार्मिक, आन्दोलनों एवं सम्प्रदायों के रूप में विकसित हुए। ये पूर्ववर्ती विचारधाराओं की प्रतिपक्षी परम्परा को प्रस्तुत करती हैं। इन परिवर्तनों के भौगोलिक क्षेत्र भी भिन्न थे। जैसे ब्राह्मण एवं ब्राह्मणेतर ग्रन्थों का ज्ञान अधिकांशतः गंगा, यमुना की घाटी या पूर्वी भारत तक ही सुनिश्चित था, यद्यपि इनमें आर्यावर्त की कल्पना भी मिलती है जो कभी गंगा-यमुना दोआब तक तो कभी हिमालय से लेकर विन्ध्य और पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के भी भाग तक विस्तृत कहा गया है। स्पष्टतः इनमें दो भिन्न संस्कृतियों के मूल्यों की स्थापना है

एक संस्कृति कुरु - पांचाल प्रदेश की यज्ञ एवं देवता प्रधान तथा पुरोहितों के वर्चसव की पक्षधर थी, दूसरी संस्कृति गंगा की घाटी के क्षेत्र में पनपी नयी संस्कृति थी जो नगरीय जीवन के मूल्यों के अधिक निकट थी। लेकिन जिनमें कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्धों एवं ग्रामों का नवीन रूप उभरा था। दोनों में ही परस्पर भेद स्पष्ट होता है। इस युग के नवीन धार्मिक आन्दोलनों में भी वैदिक परम्पराओं के प्रतिपक्षी स्वरूप स्पष्ट होते हैं, जैसे अनीश्वरवाद यज्ञों का विरोध, वेदों की महत्ता पर सन्देह लोकधर्मों की पुष्टि आदि।

उपनिषदों से तथा प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी ई. पू. एक बौद्धिक और आध्यात्मिक क्रान्ति का युग था जबकि ब्राह्मण और श्रमण आचार्य और भिक्षु अनेकों धार्मिक, दार्शनिक, मतों की उद्भावना और नाना नवीन मार्गों और सम्प्रदायों का प्रचार कर रहे थे।" परिव्राजकों का तत्कालीन समाज में महत्व इस व्यापक बौद्धिक आध्यात्मिक जिज्ञासा के कारण ही था। प्रचलित वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य यज्ञादि के अनुष्ठान से देवताओं के प्रसाद और फलतः सुखी जीवन तथा स्वर्ग की आशा कर सकते हैं। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी ई. पू. के प्रायः सभी विचारक पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे और मृत्यु तथा क्षयं से अनिवार्य तथा ग्रस्थ लौकिक और पारलौकिक जीवन को एक दुःखमय विभीषिका मानते थे। भोग के स्थान पर मोक्ष चाहते थे। उनमें विचार और मतभेद इस बात पर था कि बन्धन और मोक्ष के कारण क्या है घ् श्रमण परम्परायें कुछ सीमा तक वैदिक परम्परा के विरुद्ध भी थी। इन नयी परम्पराओं में अनेक वादों का जन्म हुआ जैसे कर्मवाद, क्रियावाद, नियतिवाद, उच्छेदवाद, तपवाद, अज्ञानवाद आदि इससे सम्बन्धित विचार भी इस युग में प्रसिद्ध हुआ।

भौतिकवाद

कुछ विचारक पुनर्जन्म में आस्था नहीं रखते थे और आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति रूप-मुक्ति की खोज को ही असंगत मानते थे। विभिनन दुःखों के लिए विभिन्न दृष्ट उपाय उपलब्ध हैं। दुःख की अत्यन्त निवृत्ति के लिए मृत्यु की शरण में जाना होगा, किन्तु दुःख के भय से जीवन के नाना सुखों को त्याग नहीं करना चाहिए। मनुष्य चार भौतिक तत्वों के संयोग से बना है और चैतन्य उसका आगन्तुक धर्म है। इन महाभूतों के विसंयोग से मृत्यु हो जाती है जिसके बाद कोई परलोकादि शेष नहीं रह जाते। इस प्रकार के भौतिकवाद का संकेत छान्दोग्योपनिषद के अष्टम् प्रपाठक में मिलता है, जहाँ असुरों का प्रतिनिधि विरोचन देहात्मवाद से सन्तुष्ट हो जाता है। गीता के *16* वें अध्याय में आसुरी निष्ठा का वर्णन है। श्वेताश्वतर में ब्रह्मवादियों के मौलिक प्रश्न "अधिष्ठता केन

ISSN-2230-7540

सुखेतरेषुवर्तामहे," को उत्थापित कर उत्तर में काल, स्वभाव नियति यदृच्छा के साथ भूतानि को भी जिज्ञाषित कारण के रूप में अभिहित किया गया है। बौद्ध ग्रन्थों में "उच्छेदवाद" का उल्लेख मिलता है जो कि मृत्यु का विनाश मानता था। सामंजफल सुप्त में अजितकेशकम्बलि नाम के आचार्य का उच्छेदवाद उल्लिखित है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में एक और भौतिकवादी विचारक पायसिपएसि का उल्लेख आता है, जो कि आत्मा और सत्ता को प्रत्यक्ष की कसौटी पर जांचना चाहता था। यह स्मरणीय है कि उत्तर कालीन चार्वाक अथवा लोकायत मत के अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। पालिग्रन्थों में लोकायतिक शब्द पाया जाता है, किन्तु अर्थ भिन्न प्रतीत होता है। चतुर्थ शताब्दी के कौटलीय अर्थशास्त्र में लोकायत को अन्वीक्षिकी के अन्तर्गत माना है। महाभारत में चार्वाक का उल्लेख मिलता है। रामायण में जाबालि का मत सदृश है। पाणिनी आस्तिक, नास्तिक और दैष्टिक मतों की ओर संकेत करते हैं। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि उपनिषदकाल से प्रारम्भ होकर चतुर्थ शताब्दी ई. पू. तक एक निश्चित भौतिकवादी एवं नास्तिक विचारधारा का उद्‌गम और प्रवाह हुआ था। यह विचारधारा प्रत्यक्षवादी थी और परलोक अथवा पुनर्जन्म को नहीं मानती थी। यह अनेक नामों से उल्लिखित है और वैदिक यज्ञादि कर्म का उतना ही विरोध करती थी जितना श्रमणों के निवृत्ति मार्ग का।

निष्कर्ष

इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम बने। बौद्ध धर्म को अंगीकार करने के कारण ही मातंग नामक चाण्डाल ने "महाब्रह्म" पद की प्राप्ति की। एक अन्य मंत्रबल से युक्त "महाचाण्डाल" का उल्लेख अम्ब जातक में प्राप्त होता है। इस जातक के अन्त में कही गयी गाथा विशेष उल्लेखनीय है - क्षत्रिया, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस में से जिस किसी मनुष्य से किसी को धर्म का ज्ञान प्राप्त हो वही उसके लिए उत्तम नर है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शूद्र चाण्डाल तथा पुक्कुस भी धर्मोपदेश देने में समर्थ बन सकते थे। एक अन्य धार्मिक चाण्डाल तथा चम्मसाटक, परिव्राजक का विवरण भी प्राप्त होता है। हिरिजातक में जाति तथा वर्ण के स्थान पर शील तथा श्रेष्ठता पर बल देते हुए कहा गया है कि अधार्मिक क्षत्रिय हो, चाहे अधार्मिक वैश्य, वे दोनों लोको (देव लोक, मानव लोक) को छोड़ दुर्गति को प्राप्त होते हैं। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल तथा पुक्कुस सभी इसी लोक में धर्माचरण करने से देवताओं के समान होते हैं। गंगमाल जातक में गंगमाल नाई के द्‌वारा प्रत्येक बुद्धत्व प्राप्त किये जाने पर राजा ने राजमाता तथा राजपरिषद के सहित उसे प्रणाम किया। थेर तथा थेरी गाथाओं में दस थेर तथा आठ थेरियाँ शूद्र वर्ग से सम्बद्ध थी। इनमें नट, चण्डाल, डालिया बनाने वाले तथा शिकारी के अतिरिक्त दासी: एवं नर्तकी का उल्लेख भी प्राप्त होता है। एक गृद्‌य शिक्षक के भिक्षु हो जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता हैं।

सन्दर्भ सूची

1. लूडर्स लिस्ट, नं 0.14.
2. सुवीरा जायसवाल, द ओरिजिन एण्ड डेवलपेन्ट ऑव वैष्णविज्म पृष्ठ-79
3. तथा 83
4. अष्टाध्यायरी 5.2.76 पर भाष्य 130 बी. एन. पुरी, इण्डिया इन दं टाइम
5. ऑव पतंजलि, पृ 0.188
6. महाभारत शान्ति पर्व 349.64
7. सांख्य योग पास्चरात्रं वेदाः पाशुपतंतथा
8. ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै
9. वही, 349.67 उमापतिर्भूतपति श्रीकण्डो ब्राह्मण सुतः

ISSN-2230-7540

10. उक्तावानिदमत्यग्रो ज्ञान पाशुपतं शिव

11. वायुपुराण, अध्याय-33 लिंग पुराण अध्याय-24

12. ए कम्प्रीहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इण्डिया, वाल्यूम-2, पृ 0.401

Corresponding Author

Jamuna Lal Meena*

Lecturer, Govt. College Karauli, Rajasthan

GNITED MINDS Journals